REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 12 | SEPTEMBER - 2018

जैन धर्म साहित्य में पर्यावरण चेतना

प्रा. डॉ. रामचंद्र मारूती लोंढे
क्रांतिसिंह नाना पाटील महाविद्यालय, वाळवा.

जैनधर्म भारत का प्राचीनतम धर्म है। इसे प्रारम्भ में श्रमणधर्म, अर्हतधर्म एवं निर्ग्रन्य धर्म के नाम से जाना जाता था । जैनधर्म् की परम्परा के मठापुरूष समस्त प्राणियों में समान भाव रखते थे, क्षमता की साधना करते थे, इसलिए वे श्रमण कहलाये । श्रमण वह है जिसका मन शुध्द है, जो पापवृत्तिवाला नहीं है तथा जो मनुष्यों एवं अन्य सभी प्राणियों को अपने समान समझाता हुआ उन पर अहिंसा का भाव रखता है । जैनधर्म के महापुरूषों को अध्यात्मिक गुणों से युक्त होने के कारण ''अर्हत'' कहा जाता है तथा धर्मरूपी तीर्थ के संस्थापक होने के कारण वे ''तीर्थकर'' कहलाते है। उनके बाल-भीतर किसी प्रकार का कोई परिग्रह नहीं होता दुप्रवृत्ति नहीं होती, इसलिए वे ''निर्ग्रन्य'' कहे जाते है। उन्होंने अपनी विषय वासनाओं को जीत लिया है, इसलिए ये ''जित लिया है, इसलिए ये ''जिन'' कहलाते है। ऐसे जिन व्दारा प्रवर्तित धर्म को जैनधर्म कहा गया है।''

जैनधर्म साहित्य में पर्यावरण चेतना :

अहिंसा प्रधान जैनधर्म में प्रतिपादित जीवनशैली हिंसादि पंच पापों के नियंत्रण की शैली है। हम सभी जानते है कि प्रत्येक मनुष्य के जीवनक्रम में चलना-फिरना, बोलना, खाना-पीना, वस्तु उठाना-रखना और शरीर सम्बन्धीं मलादि का विसर्जन अत्यन्त आवश्यक है। शेष कार्य इनके ही विस्तार में किये जाते है। गृहविरत साबुजन, भी गमनागमन आदि पाँचो क्रियाओं को करते है। क्योंकि वे भी शरीरधारी है। पूर्णतया अहिंसावृत्ती होने से वे शरीर सम्बन्धी अपनी इन क्रियाओं को अत्यन्त सावधानी से सम्पन्न करते है। उनके आचरण से किसी भी प्राणी को कभी कोई कष्ट न हो उसका वे सदैव ध्यान रखते है। पाँच महाव्रतों के पालयिता साधुजन भीतर में लाभअलाभ सुख-दु:ख, जीवन-मरण, मान-अपमान, निंदा-स्तुति, अशिप्रहार-पूजा में समताभाव धारण कर निजपर के अहित में सदैव तत्पर रहते हुए आत्म-शुध्दि हेतु अनशन अवमौवर्य-वृत्ति परिसंख्यान तप करते है। आत्मस्वरूप की अनन्य श्रध्दा से समान्वित ज्ञान-चरित्र की साधना ही उनकी जीवन प्रणाली है। जिन के पंचेद्रिय निरोध व्रत समिती गुप्ति परिपालन ओर कषायों का निग्रह है। उनके तन पर वस्त्र नहीं, मन में रागारि नही, तो फिर उन्हें धनकी आवश्यकता क्यों कर होगी? धन की आवश्यकता नहीं होने स उनका जीवन पूर्ण अपरिग्रही होता है यही है यती तो अध्यात्म का परम आदर्श है। पूर्णतया अहिंसावृत के परिपालन से प्राणीमात्र को संरक्षण देकर सत्य अचौर्य-ब्रम्हचर्य और परिगृहरूप व्रतों से मानसिक वाचनिक कायिक रूप शुभ प्रवृत्तियों से वर्तनकर सबका मंगल करनेवाले साधुजन राग-व्देषादि भावकर्म एवं ज्ञानावरणादि दुष्यकर्मरूप निज के आध्यात्मिक पर्यावरण को शुध्द करते है।2 अपने हर नित्य कर्म से वे

पर्यावरण चेतना निर्माण करते है। उनकी हर क्रिया पर्यावरण संरक्षण करके मानवजाती में चेतना निर्माण करना जान पडता है।

पर्यावरण शुध्दी

मध-मांस- मधुसेवन का वर्जन (क्योंकि ये विकार उत्पन्न करनेवाले है और इनके निर्माण और प्राप्ति में हिंसा भी होती है) रात्रि भोजन त्याग, अनछनाजल नहीं पीना, हरित वनस्पति सब्जी-फल की संख्या का सीमन, शुध्द शाकाहारी भोजन करना, चर्म निर्मित वस्तुओं का उपयोग नहीं करना, प्राणिज औषधिओं का त्याग रखना, उन श्रंगार प्रसाधनों का वर्जन जो हिंसा से निर्मित होते है, अखाद्य पदार्थ भक्षण त्याग, खाद्य पदार्थों में भी अमर्यादित पदार्थों का वर्जन इत्यादि ऐसी प्रवृत्तियों है जिनके अपनाने से शारीरिक स्थास्थ लाभ तो है, किन्तु अहिंसा का परिपालन होने से जैनाचार के इन घटकों में पर्यावरण शुध्दि में भी सहयोग प्राप्त होता है।[3]

पशुओं का रक्षण –

प्राकृत-कथाओं में अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए कई प्रयोग किये गये है। मेघकुमार के पूर्वभव के जीवन के वर्णन-प्रसंग में "मेरु प्रभ" हाथी की क्या वर्णित है। यह हाथी भी आग से घिरे हुए जंगल में एकत्र छोटे बडे प्राणियों के बीच में खडा है। हर प्राणी सुरक्षित स्थान खोज रहा है। इस मेरुप्रभ हाथी ने जैसे ही खुजली मिटाकर अपना पैर नीचे रखना चाहता है, किन्तु जब उसे पता चला कि एक छोटा प्राणी, उसके पैर कि संरक्षण में आया है तो उसकी रक्षा के लिए मेरुप्रथ हाथी अपना पैर उठाये ही रखता है। और अन्तत: तीन दिन- रात वैसे ही खडे रहने पर वह स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। किन्तु वह उस छोटे से प्राणी खरगोश तक धूप और आग की गर्मी नहीं पहुँचने देता। अहिंसा की इससे बडा उदाहरण और क्याहोगा?

सूत्रकृतांग (7) में पृथ्वी, आप, तेज , वायु और आकाश को पाँच महाभूत माननेवाले मत का निर्देश है। इस मत के अनुसार इन पाँच भूतों से एक देही (आत्मा) का निर्माण होता है और उन पाँच के विनाश होने पर देहीका भी विनाश हो जाता है।[5]

प्रकृति और मनुष्य–

प्रकृती और मनुष्य का सम्बन्ध मनुष्य के प्रारंभिक विकास के साथ जुडा हुआ है। अरण्य संस्कृति से ही इस देश का विकास हुआ है। प्रकृति और मनुष्य के सम्बन्ध को प्राकृत आगमों में सुक्ष्मता के साथ प्रतिपादन किया गया है। डॉ. जे. सी. सिकंदर ने जैन ग्रन्थो में प्राप्त वनस्पतिशास्त्र का अध्ययन प्रस्तुत किया है। आचारांग में वनस्पति और मनुष्य की सूक्ष्म तुलना करते हुए कहा गया है कि दोनों का जन्म होता है, वृध्दि होती है, चेतनता है, काटने में मलानता आती है। आहार ग्रहण करने की प्रक्रिया दोनों की समान है। इसी तरह की अनेक समस्याएँ वनस्पति और मनुष्य में समान है, अत: वनस्पति भी मनुष्य से कम मूल्यवान नहीं है। वनस्पति और वृक्ष मानव जीवन के मूलाधार है। उनसे वह जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। कल्पवृक्ष की मान्यता का आधार है कि प्रकृति मनुष्य को जीवन देनेवाली है। इस सत्य का उद्घाटन विश्व में पाये जानेवाले अनेक उपयोगी वृक्ष आज भी कर रहे है। इन्दूटिकेकर की सम्पादित पुस्तिका 'पानी और पेडों में जीवन' इस विषय में विशेष प्रकाश डालती है। 'द सीक्रेट लाइफ ऑफ प्लान्टस' के लेखकों ने यह सिध्द कर दिया है कि मनुष्य से भी सूक्ष्म तीव्र संवेदनशीलता पौधों के पास है।[6] उसे विकसित करने की आवश्यकता है। अंक गणित करनेवाला वृक्ष, दूध देनेवाला 'काऊ ट्री' वृक्ष, डिझेल ट्री, गैस ट्री आज अनेक नाम ऐसे पौधों को दिये गये है, जो मनुष्य की हर आवश्यकता की पूर्ति कर सकते है।

पर्यावरण चेतना का सम्मान –

जैन दर्शन की जीवन पध्दति में अहिंसा, अपरिग्रह, शाकाहार, अभय आदि के अतिरिक्त कुछ अन्य बाते भी इतनी महत्त्वपूर्ण है, जो पर्यावरण की शुध्दता में सहायक हो सकती है। जैन साधु जीवन भर पैदल चलते है। उनकी यह पद – यात्रा प्रकृति के साथ सीधा तादाम्य स्थापित करती है। चतुर्मास में जैन साधु एक स्थान पर रूककर प्रकृति के उल्हास का स्वागत करते है। उनका दृष्टिकोण होता है कि वर्षा ऋतू में हरियाली, पानी, वनस्पति सब अपने विकास पर है। असंख्य कीडे मकोडे भी अपनी विश्वयात्रा पर इस समय निकलते है। उन सबके संचरण में विकास में मनुष्य को चाहिए की वह अपना गमन करके

बाधा न पहूँचाए । इस अवधि में वह कम से कम खाये और सादगी से रहे। वास्तव में चतुर्मास सादगी की शिक्षा का त्यौहार है।[7] चतुर्मास में सभी पर्यावरण की चेतना का सम्मान करते है।

अहिंसा प्रधान जैनधर्म में प्रतिपादित जीवन शैली हिंसा पंच पापो के नियंत्रण की शैली है। हिंसादि पापों के विपर्याय में अहिंसा – सत्य – अचौर्य – ब्रम्हचर्य – अपरिग्रह ये पांचव्रत कहे गये है। इन व्रतों का पूर्णतया परिपालन गृहविरत साधुजन करते है जो कि संसार – शरीर – भोगो से पूर्णतया विरत होते है तथा गृहस्थ जन इनका देशरूप से परिपालन करते है। आत्मसाधना की भावना से धर्माचरण में तत्पर साधु व गृहस्थ की जीवनचर्या नियंत्रित और संतुलित हो जाती है। उनकी चर्या ही प्रत्यक्ष से प्रकृति के सन्निकट होकर पर्यावरण संतुलन या संरक्षण की पर्याय ही बन जाती है। मानवमात्र की एकता की भावना को भगवान महावीर ने और भी नया रूप दिया है।[8] इससे स्पष्ट होता है कि, जैनधर्म में पर्यावरण संवर्धन में बहुत बडा योगदान है।

जैनधर्म विश्व के प्राचीनतम धर्मों में से है। प्रकृति के अनुसार इसके सिध्दान्त विकसित हुए है। जैन सद्गृहस्थ या श्रावक पृथ्वी, पानी, हवा, वनस्पति आदि जीव के आवश्यक तत्वों का भी दुरूपयोग नहीं करते। उनके उपयोग की सीमा निर्धारित कर लेते है। जिससे जीवों की अमर्यादित हिंसा से बच सके। पर्यावरण की हानि रोकने की दृष्टि से यह कितना महत्त्वपूर्ण है। हम देख सकते है। मनुष्य को न केवल ऐसे कार्यो से बचना होता है, अपितु उसके मनोभाव भी शुध्द होने चाहिए।[9]

पर्यावरण संतुलन–

भगवान महावीर के अनुसार यदि हमे भयमुक्त उत्तम सुख प्राप्त करना है, तो उसे धर्म द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वह उत्तम सुख प्राप्ति का साधन धर्म क्या है? अगर इस प्रश्न पर विचार करें तो इसका मूल चिन्तनं है आत्मा के निजस्वरूप को प्राप्त करना। गीता में भी कहा है, "यतो धर्मः ततो जयः" इसका आशय यही है कि हम "Work is Worship" को आधार बनाकर सहिष्णू भाव से अपने कर्तव्यारूढ होकर आगे बढे तो निश्चीत ही धर्म की प्रभावना होगी और प्रकृति के जीव-अजीव सभी प्राणियों का संरक्षण करते हुये अपने वातावरण को सुखद बना सकेंगे और यह सुखद अनुभूति हमें जैन दर्शन के रत्नत्रय को अपनाने से ही प्राप्त हो सकती है। सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र यह रत्नत्रय ही आत्मा का सच्चा धर्म है। धर्म के प्रचंड प्रताप से पाप आदि दुर्गुण ईधनवत जलकर भस्मीभूत हो जायेंगे तब प्रकृति का वातावरण स्वच्छ, निर्मल, सुखद स्वरूप प्राप्त उभरेगा और प्रदूषित वातावरण का शमन होगा। यह सब संभव है भगवान महावीर की अमृतमयी वाणी की पथ पर चलकर।[10]

ऋषभदेव जैन धर्म के प्रथम एवं महावीर अंतिम तीर्थकर है। सभी ने प्रकृति के साथ संतुलन रखने के लिए समस्त जीवों के साथ परस्पर उपकार करने के लिए संयम का उपदेश दिया है। उन्होंने जीवों के प्रति संयम रखने की महत्त्वपूर्ण प्रेरणा दी है। जैन धर्म प्रारंभ से ही प्रकृतिवादी रहा है और आज भी जैन धर्म अपने आचरण से, धर्म साधनाओं से एवं उपासना पध्दतियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप में प्रकृति के संरक्षण एवं संतुलन में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्रकृति के इसी संरक्षण एव संतुलन पर सम्पूर्ण पर्यावरण टिका हुआ है। यदि हमें मानव जीवन को बढ़ते हुये प्रदूषण एवं विनाशकारी जीवन से बचाना है तो जैनधर्म के सिध्दान्तों को आधार बनाकर प्रकृति से तारतम्य स्थापि करके "जियो और जीने दो" का रस्ता अपनाना होगा। अगर इसकी उपेक्षा की गई और सार्वजनिक जीवन में अहिंसा, अपरिग्रह जैसे सिध्दान्तो का पालन न किया तो विश्व का पर्यावरण, प्रदूषण बढ़ता जायेगा जिसका उत्तरदायित्व शासन का नहीं समाज का एवं स्वयं व्यक्ति का होगा।

जैन एवं जैनेत्तर धार्मिक साहित्य के अध्ययन एवं मनन से यह बात ज्ञात होती है कि अन्य धर्म शास्त्रों कि अपेक्षा जैन धर्म में पर्यावरण संरक्षण के पर्याप्त निर्देश उपलब्ध है। वर्तमान में हो रहे प्रकृति के संसाधनों का दोहन, भूखनन, वायु प्रदूषण, जंगलो का काटना आदि ये सब जैन धर्म के अनुसार महारंभ की श्रेणी में आते है जो अधोगति अर्थात नरक के कारण है। हम आत्म कल्याणियों का कर्तव्य है कि इनसे बचे और जैन धर्म-साधना द्वारा संरक्षण करें।[11]

जैन धर्म में पर्यावरण चेतना बहुत महत्त्वपूर्ण है। हरित वनस्पति को तोडने, काटने का निषेध जैन धर्म में किया है। जैन साधु को तो उसके स्पर्श तक का निषेध है। वनों को काटना, आग लगाना मनाई है। इससे वनस्पति और वन्य जीवों की हिंसा होती है। कन्दमूल खाना भी मना है, क्योंकि अगर हम जडों का ही भक्षण करेंगे तो पौधों का अस्तित्व नष्ट हो जायेगा। इससे वनस्पति को नुकसान होगा। अपनी साँस से भी पर्यावरण प्रदूषित ना हो इसलिए जैनसाधू मुख पर श्वेत वस्त्र बाँधते है। सभी जैनसाधू शाकाहारी होते है। पदयात्रा ही करते है। वाहन से नहीं जाते बल्कि पैदलही चलते है। जैनधर्म के चौवीस तीर्थकर अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर ही उपदेश देते थे, इसके पीछे प्रकृति व पर्यावरण के प्रति उनका प्रेम व चेतना प्रकट होती है।

संदर्भ –

1. प्रो. जैन प्रेम सुमन, जैन संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण, युनिक ट्रेडर्स, जयपूर, प्रथम संस्करण 2009, पृ. 34
2. डॉ. जैन पी.सी., जैन धर्म में पर्यावरण चेतना एवं संरक्षण, जैन अनुशीलन केंद्र, जयपूर, प्रथम संस्करण, 2005, पृ. 152 – 153.
3. वही, पृ. 154.
4. प्रो. जैन प्रेम सुमन, वही, पृ. 74
5. मालवणिया दलसुख, जैन दर्शन का आदिकाल, भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद, 2012, पृ. 32
6. डॉ. जैन प्रेम सुमन, जैन धर्म और जीवन मूल्य, संधी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1990, पृ. 86
7. वही, पृ. 93
8. मालवणिया दलसुख, वही, पृ. 3
9. कैवल्य (सम्पादकीय) जैन श्वेतावर संघ (संस्था) महावीर साधना केन्द्र, जयपूर 1992, पृ. 13
10. डॉ. शिवप्रसाद जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण, पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी प्रथम संस्करण 2003, पृ. 60
11. वही, पृ. 60, 61